जीवशास्त्र के कुछ भ्रम

स्टीवॅन वोगल

जीवशास्त्र का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम, विज्ञान की इस शाखा का वह चेहरा है जो हम जीवशास्त्री दुनिया के सामने पेश करते हैं। हमारे आगे के विशिष्ट पाठ्यक्रमों की तुलना में इस प्रारम्भिक पाठ्यक्रम को कहीं ज़्यादा लोग पढ़ते हैं। हमारे बारे में राय और जीवशास्त्र को अपना अध्ययन क्षेत्र बनाने वालों का चरित्र, दोनों इन पाठ्यक्रमों से निर्धारित होते हैं। मेरी यह मान्यता है कि जीवशास्त्र अपने आप में चाहे कितना ही रोचक विषय क्यों न हो और पढ़ाने वाले की शैली चाहे कितनी ही आकर्षक क्यों न हो, हम फिर भी इस विषय की एक बहुत खराब तस्वीर पेश करते हैं। मुझे चिन्ता होती है कि हम शायद उसे एक ईमानदार और सार्थक गतिविधि की बजाय शब्दावली के एक ढेर, प्रचलित धारणाओं और उनमें से झलकती विसंगतियों के घालमेल की तरह पेश करते हैं। क्या इस प्रारम्भिक पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद किसी

मेधावी छात्र के सामने जीवशास्त्र की ऐसी कोई तस्वीर बनती है जिसमें उसे जीवनपर्यन्त आकर्षण की सम्भावना दिखे?

मैंने महाविद्यालय में जीवशास्त्र का जो पाठ्यक्रम पढ़ा था, उसके बावजूद, न कि उसके कारण, आज मैं एक जीवशास्त्री हूँ। मैंने अपने सहकर्मियों व छात्रों से अनौपचारिक चर्चा के दौरान यह पाया कि उनका अनुभव भी मेरे समान ही निराशाजनक रहा था। आजकल मुझे कई पुस्तकों की समीक्षा करनी पड़ती है और कई पुस्तकों का तो मैंने सम्पादन भी किया है। किन्तु इन सब में मुझे ऐसी कोई पुस्तक नहीं दिखती जिसे पढ़ने की सिफारिश मैं किसी ऐसे व्यक्ति से कर सकूँ जिसे जीवशास्त्र के बारे में जानने की उत्सुकता है। और, जिस हद तक वे किताबें कक्षा और प्रयोगशाला की परिपाटी को प्रतिबिम्बित करती हैं उसे देखकर निराशा होती है।

जीवशास्त्र का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम पढ़ाते हुए मुझे 20 वर्ष हो गए हैं और इस अवसर पर मैं एक शिकायतभरी आलोचना करना चाहता हूँ। अतः बुनियादी जीवशास्त्र के प्रस्तुतिकरण को लेकर मेरी शिकायतों की सूची यहाँ दे रहा हूँ। किन्तु इसके साथ कुछ सकारात्मक सुझाव भी हैं। यहाँ प्रमाण के रूप में कोई पुस्तकीय विवरण नहीं दिए गए हैं, क्योंकि किन्हीं लेखकों और प्रकाशकों को नाराज़ करने से कुछ हल नहीं निकलता।

बुनियादी परिभाषाएँ

जीवद्रव्य (protoplasm) शब्द पाठ्यपुस्तकों में क्यों चला आ रहा है यह समझ से परे है। 1956 में गॅरेट हार्डिन ने कहा था कि इस शब्द के बारे में यही कहा जा सकता है कि यह या तो जैवशक्तिवाद (vitalism) के अवशेष के रूप में चला आ रहा है या फिर केवल भाषा की सुविधा के लिए इसे अभी तक बना रहने दिया गया है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस शब्द का उपयोग करके हम अनजाने में जैवशक्तिवाद को बढ़ावा दे रहे हैं, और साथ ही हमें निरर्थक मुश्किल तकनीकी शब्दों को फैलाने से भी बचना चाहिए।

श्वसन को आमतौर पर किताबों में ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें ऑक्सीजन की खपत होती है। किन्तु कुछ ही पृष्ठों के बाद इनमें बिना किसी झिझक के अनॉक्सी (anaerobic) श्वसन की बात कर दी जाती है जबकि उनकी पूर्व परिभाषा के अनुसार यह सम्भव नहीं होगा।

कोशिकीय श्वसन की तुलना प्रकाश संश्लेषण से की जाती है और दोनों प्रक्रियाओं को परस्पर-विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक अपचयी (catabolic) है तो दूसरी उपचयी (anabolic)। एक को जन्तुओं के द्वारा (और सम्भवतया पाश्चर की यीस्ट कोशिकाओं द्वारा) किया जाता है, और दूसरी को पौधों के द्वारा। इस सबसे विद्यार्थियों की यह धारणा बन जाती है कि केवल

पौधे ही बड़े अणुओं का संश्लेषण कर सकते हैं (प्रोटीन को छोड़कर) और केवल जन्तु ही श्वसन करते हैं।

उच्च ऊर्जा आबन्धों (high-energy bonds) के मिथक को लगातार बनाए रखा जाता है। वास्तव में, इनकी ऊर्जा न तो उच्च होती है और न आबन्धों में होती है। ATP के अन्तिम फॉस्फेट के जल-अपघटन (hydrolysis) से प्राप्त होने वाली 7 से 13 किलो केलोरी ऊर्जा की तुलना में कार्बन-कार्बन सहसंयोजी आबन्ध (covalent bond) में लगभग 100 किलो कैलोरी/मोल ऊर्जा होती है। सही स्थिति यह है कि इन तथाकथित उच्च आबन्धों की ऊर्जा छोटे-छोटे पैकेट्स में मौजूद होती है जो कोशिकाओं में होने वाली अभिक्रियाओं के लिए बहुत अधिक सुविधाजनक होता है। शायद यह कहना उचित होगा कि ATP के दूसरे और तीसरे फॉस्फेट समूहों का जल-अपघटन असाधारण रूप से सरलता से हो जाता है। इसमें स्थानान्तरित होने वाली ऊर्जा के पैकेट का परिमाण एंज़ाइमी अभिक्रियाओं को पूरा करने के लिए बहुत सुविधाजनक होता है।

किताबों में बार-बार 20 एमीनो अम्लों का ज़िक्र किया जाता है। सच्चाई यह है कि एमीनो अम्लों की संख्या लगभग अन्तहीन है। पर किताबों का तात्पर्य केवल उन 20 विशिष्ट अल्फा-एमीनो अम्लों से होता है जिनसे अनुवांशिक कोड के अनुसार पॉलीपेप्टाईड्स बनते हैं। आखिरकार, गामा-एमीनो ब्युटिरिक अम्ल हमारे तंत्रिका तंत्र का एक महत्वपूर्ण एमीनो अम्ल है, किन्तु यह किसी भी प्रोटीन का भाग नहीं है।

कोशिकाएँ और उनकी कार्यिकी

कोशिका सिद्धान्त से प्रायः यह आशय समझा जाता है कि जीवधारी कोशिकाओं से बने होते हैं। इस सिद्धान्त को परिभाषित करने वालों ने एक बौद्धिक छलाँग लगाते हुए इस स्थूल अवधारणा को प्रस्तुत किया था कि जीवधारियों में कोशिका एक बुनियादी कार्यकारी इकाई है जिसे कुछ स्वायत्तता प्राप्त है। परन्तु जीवधारियों के शरीरों में कहीं अधिक सामग्री कोशिकाओं के अतिरिक्त यानी बाहर (extracellular material) होती है। सी-एनीमोन और पेड़ों जैसे जीवधारियों का बहुत ही छोटा हिस्सा जीवित कोशिकाओं से बना होता है। यदि बारीकी से देखा जाए तो जीवधारी कोशिकाओं से बने हुए नहीं होते,

कोशिका

किन्तु उनका विकास कोशिकाओं से ही होता है। और, जैव-विकास यात्रा में उनका अस्तित्व भी कोशिकाओं के लिए ही होता है।

इन किताबों का इससे भी अधिक एक आम दुर्गुण उनमें इस मुद्दे को नज़रअन्दाज़ किया जाना है कि आखिर कोशिकाएँ होती ही क्यों हैं? जीवधारियों के आकार के बढ़ने पर उनके शरीर कोशिकाओं के ऐसे संघों के रूप में क्यों बने रहे जिनमें कोशिकाओं के क्रियाकलाप समन्वित ढंग से होते हैं? कोशिकीय व्यवस्था के पक्ष में पहला तर्क तो यही हो सकता है कि विशाल जीवों की बनावट कोशिकाओं के विशिष्ट काम करने वाले पुंजों (standardized sub-assemblies) से सम्भव हो सकती है। दूसरा है परिवहन व्यवस्था के रूप में विसरण (diffusion) की सीमित क्षमताएँ, और तीसरा आधार है झिल्लियों/सतहों के क्षेत्रफल का आयतन से बदलता हुआ अनुपात। लेकिन चिन्तन की दृष्टि से हमारे बेहद निर्धन पाठ्यक्रमों में हमारी प्रवृत्ति अमूर्त विचारों, कल्पनाशील तर्कों और संशयों को नज़रअन्दाज़ करने की रहती है।

विसरण की चर्चा के समय आमतौर पर भ्रामक और गलत प्रदर्शनों का सहारा लिया जाता है। यदि इत्र की शीशी को खोला जाए या किसी रंग की एक बून्द को पानी में डाला जाए तो फैलने की जो प्रक्रिया होती है उसका प्रमुख कारण संवहन (convection) होता है, न कि विसरण। अधिक ईमानदार प्रदर्शन यह दिखाता है कि अधिक दूरी तक पदार्थों के परिवहन के लिए विसरण कितनी प्रभावहीन प्रक्रिया होती है। अपने व्याख्यान से एक दिन पहले मैं जिलेटिन या अगर[1] (agar) से आधे भरे हुए कई बीकर्स में अलग-अलग समय पर रंजक का घोल डालता हूँ। फिर व्याख्यान के दौरान रंग के नीचे की ओर उतरने की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करता हूँ। महत्वपूर्ण बिन्दु यह होता है कि विसरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें लगने वाला समय (औसतन) दूरी के आनुपातिक न होकर, दूरी के वर्ग के आनुपातिक होता है।

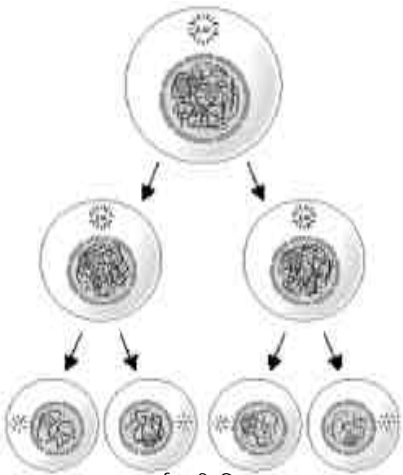

अर्धसूत्री विभाजन

आमतौर पर समसूत्री विभाजन

[1] ***अगर:*** *यह शैवाल का कोलायडीय सार है जिसका प्रयोग विशेषकर कल्चर मीडिया बनाने में किया जाता है।*

(mitosis) को थोड़े विस्तार से प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसकी तुलना अर्धसूत्री विभाजन (meiosis) से की जाती है। परन्तु इस तथ्य पर बहुत कम ज़ोर दिया जाता है कि समसूत्री विभाजन के फलस्वरूप बनने वाली दो कोशिकाओं को न केवल गुणसूत्रों की बराबर संख्या प्राप्त होती है, बल्कि उन्हें हर समजात (homologous) गुणसूत्र जोड़ी में से एक-एक गुणसूत्र मिलता है। अन्य कोई भी कोशिकांग इस तरह अनुरूप (analogous) विधि से विभाजित नहीं होता। गुणसूत्रों की सूचनात्मक भूमिका का यह एक पुख्ता सबूत है।

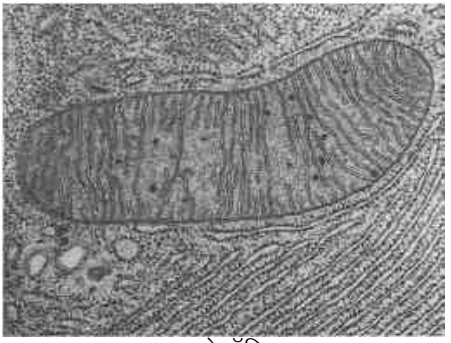
माइटोकॉन्ड्रिया

माइटोकॉन्ड्रिया का परिचय ऐसे रेखाचित्र या ट्रान्समिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ की सहायता से दिया जाता है जिसमें उनकी लम्बाई को उनकी चौड़ाई से दो से चार गुना बड़ा दिखाया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि माइटोकॉन्ड्रिया नाम का मतलब ही धागे के समान रचनाएँ होता है। इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया जाता कि माइक्रोग्राफ वास्तविक ऊतकों के बहुत पतले द्विआयामी सेक्शन का ही चित्रण करता है। सूक्ष्मदर्शी से दिखाई पड़ने वाले द्विआयामी चित्रों को सही ढंग से समझाने के लिए छात्रों के साथ और चर्चा की ज़रूरत होती है।

जीवन की प्रक्रिया

बाह्य परिवर्तनों के अनुसार अपने में संशोधन करके सन्तुलन बनाए रखने की क्षमता, अर्थात् होमियोस्टेसिस को प्रायः पुस्तकों में जीवधारियों की विशेष खूबी की तरह निरूपित किया जाता है, हालाँकि हर तरफ विशेष लक्ष्यों के लिए कार्यरत ऐसी मशीनें भी मौजूद हैं जो सिर्फ सामान्य नकारात्मक फीडबैक के आधार पर ऐसा ही करने में समर्थ होती हैं। इसके अलावा शुरू से ही सन् 1932 में कैनन के मूल कथन में भी यह स्पष्ट नहीं था कि यह शब्द, होमियोस्टेसिस, एक अवस्था बताता है, या प्रक्रिया, या फिर एक असामान्य प्रवृत्ति दर्शाता है; पर इसमें निश्चित ही जैवशक्तिवाद की बू आती है। अब तो समाजशास्त्रियों ने भी होमियोस्टेसिस की अवधारणा ढूँढ़ ली है। हमें इसे उन्हीं को सौंप देना चाहिए, और संरचना विश्लेषण (systems analysis) के वास्तविक संसार का सामना करना चाहिए।

जीवधारियों के क्रियाकलापों में फीडबैक निःसन्देह बहुत महत्वपूर्ण होता है। पर सबसे सामान्य स्तर पर भी दो बिलकुल अलग प्रकार के फीडबैक होते हैं, नकारात्मक और सकारात्मक। परन्तु, आमतौर पर फीडबैक को नकारात्मक ही मान लिया जाता है। और जब सकारात्मक फीडबैक का ज़िक्र होता भी है तो उसे रोगसूचक (pathological) करार दिया जाता है। जहाँ कहीं नकारात्मक फीडबैक उपयुक्त हो, वहाँ तो सकारात्मक फीडबैक को साफतौर पर एक आपदा की तरह देखा जाता है। लेकिन सकारात्मक फीडबैक के प्रवर्द्धक (amplifying) या समकालिक (synchronizing) प्रवृति की तरह विभिन्न जैविक उपयोग होते हैं जो किसी प्रक्रिया को समापन की ओर ले जाने, या उसका समकालिक ढंग से होना सुनिश्चित करने में काम आते हैं। कीटों के पंख त्यागने (molting) के पहले, और कुछ समुद्री कीड़ों के युग्मक अर्थात् गैमेट्स छोड़ने के पहले होने वाली घटनाओं का एक साथ होना इसके उदाहरण हैं। मनुष्यों में पूरी तरह से मल-मूत्र त्यागने की प्रक्रिया इसी के बल पर हो पाती है। यहाँ तक कि स्वयं जैव विकास को भी एक सकारात्मक फीडबैक की तरह देखा जा सकता है - प्रजनन में ज़्यादा सफलता हासिल होने से किसी प्राणी के अनुवांशिक पदार्थ का अनुपात बढ़ जाता है, जिससे अगली पीढ़ी में यह सफलता और बढ़ जाती है।

ऐसी परिस्थितियों के सन्दर्भ में, जो निश्चित ही किसी भौतिक अर्थ में सन्तुलन या साम्य में नहीं हैं, प्रायः गतिज साम्य (dynamic equilibrium) की बात की जाती है। पर वास्तव में, हमारा आशय ऐसी एक-सी रहने वाली स्थिति से होता है जो वस्तुतः साम्य में नहीं होती। यदि हम साम्य से प्रारम्भ करें और फिर जैविक सन्दर्भ में इसकी सार्थकता के अभाव पर भी गौर करें तो हम विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में व्याप्त चलन के अनुरूप हो सकेंगे। तब हम उन तरीकों की बात कर सकते हैं जिनके द्वारा सक्रिय (नकारात्मक फीडबैक) तथा निष्क्रिय (isolation or buffering) दोनों तरह की प्रक्रियाएँ एक-सी स्थिति बनाए रखती हैं।

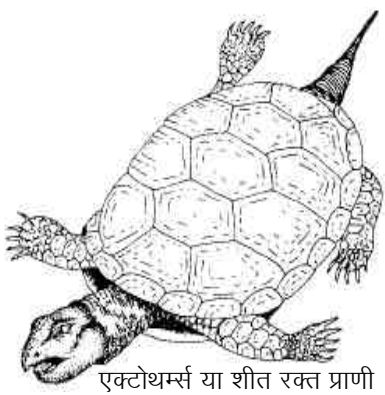
एक्टोथर्म्स या शीत रक्त प्राणी

आपेक्षिक (specific) मेटाबॉलिक दर तथा बॉडीमास के बीच प्रतिकूल सम्बन्ध का कारण सतह से आयतन के अनुपात तथा बॉडीमास के बीच इसी प्रकार के प्रतिकूल सम्बन्ध को, और ऊष्मा की क्षति को माना जाता है। यह होमियोथर्म्स या

एण्डोथर्म्स के लिए ठीक हो सकता है, पर यह मानने की सुविधा के लिए इसी तरह के उस सम्बन्ध की अनदेखी कर दी जाती है जो पोइकिलोथर्म्स या एक्टोथर्म्स में देखी जाती है।

यद्यपि अधिकांश पाठ्यक्रमों में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि संगठित जैविक संरचनाओं में और खासकर अंगों वाले जीवधारियों में आकारों की विशाल रेंज पाई जाती है, परन्तु सामान्य पाठ्यक्रम इस तथ्य के निहितार्थों पर कोई खास विचार नहीं करता। वास्तव में, न केवल सतह से आयतन का अनुपात, बल्कि परिवहन व्यवस्थाएँ, वज़न उठाने की व्यवस्था, व्यवहार तथा प्रजनन व्यवस्था भी नितान्त रूप से आकार पर निर्भर करते हैं। इस विषय पर वेन्ट ने 1968 में एक अत्यन्त रुचिकर लेख लिखा था। हाल्डेन और डि'आर्सी थोम्पसन का काम व लेखन तो अग्रगामी व उत्कृष्ट है ही।

तंत्रिका तंत्र

प्रायः कक्षाओं और पाठ्पुस्तकों में अन्तर्ग्रन्थनों (synapses) की तुलना में तंत्रिकाक्षों (nerve axons) को अधिक समय तथा स्थान दिया जाता है। यह कुछ ऐसा है मानो रेडियो की कार्यप्रणाली समझाते समय रेडियो के विभिन्न पुर्ज़ों के कार्यों की तुलना में उन तारों की कार्यविधि पर अधिक ध्यान दिया जाए जो इन पुर्ज़ों को जोड़ती हैं। तंत्रिकाओं में आयनों की संरचना और उनके प्रवाह के बारे में इतनी चर्चा की जाती है कि प्रमुख मुद्दा ही छूट जाता है, जो यह है कि मानक संवेगों (standardized impulses) के साथ सूचना का प्रसारण केवल संवेग के पहुँचने से या आवेग अन्तराल (interpulse interval) के माध्यम से ही होता है। सूचनाओं का चयन और रूपान्तरण केवल अन्तर्ग्रन्थनों में ही होता है। अतः अन्तर्ग्रन्थनों के गुणधर्मों की चर्चा किए बिना तंत्रिकाओं और व्यवहार के बीच सम्बन्ध बताना केवल हवाबाज़ी ही होती है।

तंत्रिकाक्षों के विराम विभव (resting potential) का

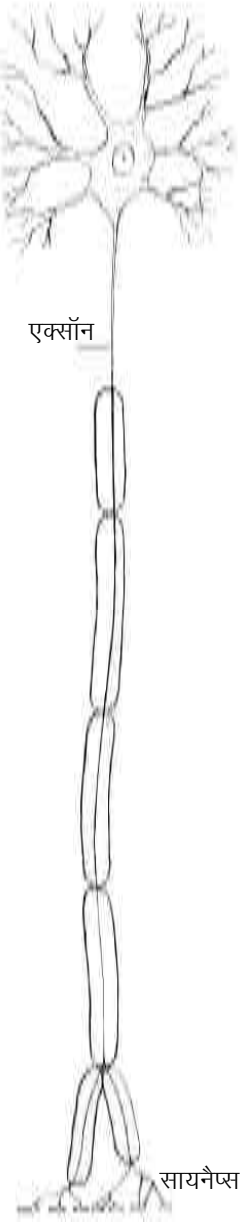

भी काफी गलत स्पष्टीकरण दिया जाता है। इसका कारण दोनों प्रकार के आवेशों में अलगाव हो जाना, अर्थात् बाहर अधिक धनात्मक आयनों का होना और अन्दर अधिक ऋणात्मक आयनों का होना बताया जाता है। वास्तव में, झिल्लियों के आर-पार होने वाली गतिशीलताओं (transmembrane mobilities) में असन्तुलन/अन्तर के कारण यह होता है। अविसरणशील ऋणायनों के भीतर रह जाने और धनात्मक पोटेशियम आयनों के बाहर की ओर विसरण करने के फलस्वरूप भीतर की ओर ऋणात्मक विभव पैदा होता है। (इस आयनिक गतिविधि का एक रोचक परिचय हॉडकिन्स के 1964 के नोबेल पुरस्कार व्याख्यान में मिलता है)। स्थिति और भी खराब हो जाती है जब विराम विभव को केवल तंत्रिका कोशिकाओं के साथ जोड़ दिया जाता है और यह जानकारी नहीं दी जाती कि विराम विभव आमतौर पर सभी जीवित कोशिकाओं में पाया जाता है। प्लास्टिक की नलियों, चांदी के तारों, डायलिसिस झिल्लियों और एक वोल्टमीटर की सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि इस प्रकार के विभव केवल जीवित कोशिकाओं का ही विशिष्ट गुणधर्म नहीं हैं।

जैव विकास

कभी-कभी असावधानीपूर्वक यह मान लिया जाता है कि डार्विन ने जैव विकास के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि डार्विन को जैव विकास के स्पष्टीकरण के रूप में प्राकृतिक वरण (natural selection) की खास विधि की पहचान करने का साझा श्रेय दिया जाना चाहिए। जैव विकास का सिद्धान्त तो प्राचीन ग्रीस के वैज्ञानिकों के समय से चला आ रहा है। इसी तरह, 'सामाजिक डार्विनवाद' को डार्विन के मत्थे मढ़ दिया जाता है, जो कतई वाजिब नहीं है।

मेंडल

जैव विकास के लेमार्क के सिद्धान्त को प्रायः तिरस्कार के साथ प्रस्तुत किया जाता है, यहाँ तक कि उसे असम्भव घोषित कर दिया जाता है। ऐसा नहीं है कि जैव विकास का लेमार्क के द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण तर्कसंगत नहीं है। उसकी कमी केवल यह है कि ज्ञात जीवधारियों द्वारा उसे अपनाया नहीं जाता। पर एक

सदी पहले इसके कारण कतई साफ नहीं थे।

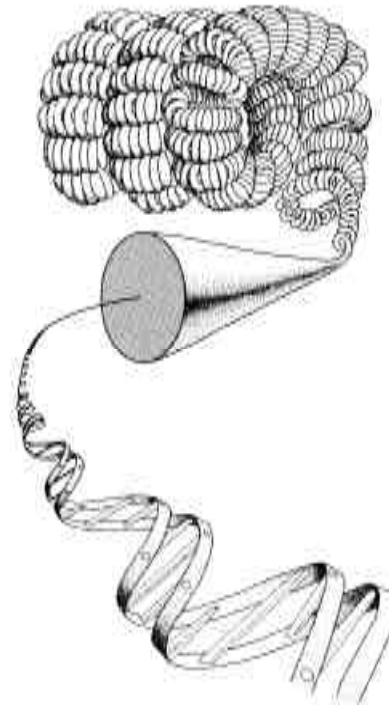

इसके विपरीत, हासिल किए गए लक्षणों को वंशानुगत ढंग से विरासत में पाने के सिद्धान्त (inheritance of acquired characters) को गलत साबित करने के लिए उस प्रयोग को बड़ी भारी सफलता माना जाता है जिसमें वाइज़मैन के द्वारा बाइस पीढ़ियों तक चूहों की पूँछों को काटकर अलग कर दिया गया था। यदि इस प्रयोग के परिणाम विपरीत होते तो इसका उल्टा साबित हो जाता। इस प्रकार के प्रायोगिक तर्क (inductive logic) से केवल किसी सामान्य प्रस्थापना (proposition) को झुठलाया भर जा सकता है। मेरी राय में बेचारे चूहों की नाहक हत्या की गई। कई समाजों में पुरुषों के शिश्नमुण्डखाल (foreskin) को बचपन में ही काट दिया जाता है, किन्तु ऐसा तो नहीं देखा गया कि इसके फलस्वरूप यह शरीर रचना आने वाली पीढ़ियों में विलुप्त हो रही है।

अनुकूलन के लिए प्रायः यह स्पष्टीकरण दिया जाता है कि जीवधारी अपनी प्रजाति की भलाई के लिए ऐसा करते हैं। दरअसल, अनुकूलन के लिए कोई वास्तविक और सुसंगत स्पष्टीकरण नहीं है, और इस अभाव को हम प्राकृतिक वरण के आधार पर आगे का अनुमान लगाने (extrapolation) की अब नकारी जा चुकी इस तरकीब के द्वारा छुपाने का प्रयास करते हैं।

जीवधारियों और रचनाओं को आद्य (primitive) और अग्रगत (advanced) में विभाजित किया जाता है। इससे कई सवाल उठ सकते हैं। यह पूछा जा सकता है कि इतनी लम्बी अवधि तक विकास होने के बाद जीवन के सरल रूप शेष रह ही क्यों गए हैं? बेहतर होगा कि हम अन्तर दिखाने के लिए आद्य और व्युत्पन्न (derived) शब्दों का उपयोग करें या फिर इन्हें सामान्यीकृत और विशिष्टीकृत कहें।

जैविक प्रजातियों की अवधारणा को एक दैवीय सत्य के समान प्रस्तुत किया

जाता है, किन्तु इसमें उन तमाम कठिनाइयों का कोई उल्लेख नहीं किया जाता जो इस अवधारणा के उपयोग में आती हैं, और ना ही इसकी चर्चा होती है कि प्रजातियों की विच्छिन्नता (discreteness) को कैसे जीन प्रवाह की बजाय समानान्तर चयन की प्रक्रिया द्वारा बनाए रखा जा सकता है। और नई प्रजातियों के विकसित होने में आने वाली समस्याओं को भी अनदेखा कर दिया जाता है।

आमतौर पर, जातिवृत्तीय पुनर्रचना (phylogenetic reconstruction) के सबूत के रूप में केवल हीकल के पुराने नियम "व्यक्तिवृत्त में जातिवृत्त की पुनरावृत्ति होती है" (ontogeny repeats phylogeny) को दोहराया जाता है। ऐसा करने में हम इस सम्भावित प्रश्न को नज़रअन्दाज़ कर देते हैं कि विकास स्वयं ही चयन का विषय क्यों नहीं हो सकता? पौधों और कीटों जैसे प्रमुख समूहों के मामले में हीकल के नियम का बुरी तरह असफल हो जाना भी हम नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। पर यह मुद्दा अभी कायम है - स्टीफन गूल्ड ने तो इस विषय पर एक किताब लिख दी। रोचक बात यह है कि हीकल के नियम के विपरीत होने वाली प्रक्रिया, चिरभ्रूणता (neoteny) का ज़िक्र कभी कभार ही होता है, हालाँकि यह मानने के पर्याप्त सबूत उपलब्ध हैं कि मनुष्य की वानरों (apes) से उत्पत्ति चिरभ्रूणता के कारण ही हुई है और आदि-कॉरडेट्स (primitive chordates) के बीच अन्तर्सम्बन्धों को निकालने में चिरभ्रूणता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

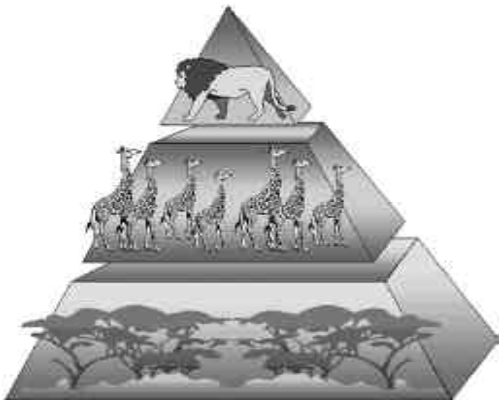

खाद्य शृंखला

पिरामिड्स

परिवेश की पारिस्थितिकी की चर्चा में प्रायः ऊर्जा परिमाण के पिरामिडों तथा उर्जा प्रवाह के पिरामिडों में घालमेल कर दिया जाता है। ऊर्जा परिमाण के पिरामिड वास्तव में, जैव संहति यानी बायोमास के पिरामिडों के ही भिन्न स्वरूप हैं। कई पुस्तकों में स्पष्ट रूप से दिए गए कथनों के बावजूद थर्मोडायनमिक्स के अनुसार चढ़ते क्रम के स्तरों में कोई घटाव नहीं होता। वास्तव में तो ऐसे ठोस उदाहरण मौजूद

हैं जिनमें एक पोषक (trophic) स्तर की खड़ी फसल उसके ऊपर की फसल से कम है। इसके विपरीत, ऊर्जा प्रवाह का पिरामिड अनिवार्य रूप से शंकु के आकार का होता है। यह भ्रम खड़ी फसल और उत्पादकता के बीच के अन्तर के कारण होता है। कुल मात्रा और परिवर्तन की दर के बीच का यह अन्तर कैलक्युलस की मूलभूत अवधारणाओं में से एक है।

एक अन्य प्रकार के पिरामिड के लिए मैं इस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा कि जनसंख्या के शंकु के आकार के पिरामिड (जो बढ़ती हुई आयु के सदस्यों की संख्या दर्शाने में नुकीला होता जाता है) को अपने आप बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रमाण नहीं मान लेना चाहिए। यद्यपि प्रजनन आयु के बाद की जनसंख्या के लिए स्तम्भाकार पिरामिड स्थिर जनसंख्या दर्शाता है, शंकु के आकार का पिरामिड केवल ऐसी मृत्यु दर का द्योतक हो सकता है जो आयु से सम्बन्धित नहीं है और यह मानव प्रजाति के पूरे इतिहास में देखा जा सकता है। अभी हाल तक हमारी प्रजाति की जनसंख्या काफी धीमी गति से बढ़ रही थी। यदि जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान दर को आधार मानकर पीछे को बहिर्वेशन (extrapolation) करें तो हमें यह हास्यास्पद परिणाम मिलेगा कि मानव प्रजाति की शुरुआत लगभग एक हज़ार वर्ष पहले हुई।

लिंग

आमतौर पर विद्यार्थियों के मन में हम यह धारणा बैठा देते हैं कि मनुष्य के लक्षण 'सामान्य' होते हैं और अन्य प्रजातियाँ 'सामान्य से भटकी हुई' (aberrant) होती हैं। उदाहरण के लिए, पाठ्यपुस्तकों से यह धारणा बनती है कि विषमयुग्मकी (heterogametic) लिंग हमेशा नर ही होता है (वीर्य पैदा करने वाला या सूक्ष्म गैमेटिक), जबकि पक्षियों और लेपिडॉप्टेरा में इसके विपरीत संरचना पाई जाती है। पुस्तकों से यह धारणा भी बनती है कि लिंग निर्धारण हमेशा अनुवांशिक अन्तरों के कारण होता है, न कि पश्चजात (epigenetic) कारणों से। किन्तु

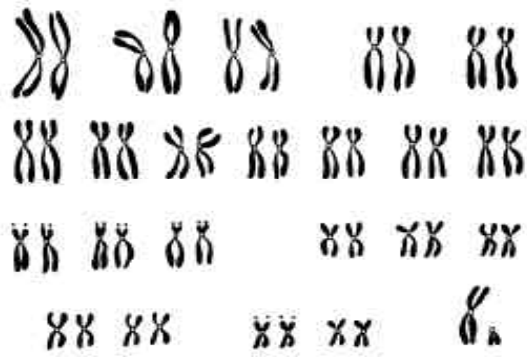

गुणसूत्र

जीवशास्त्र की पढ़ाई - भारत में प्रासंगिकता

कक्षा में शिक्षण से सम्बन्धित इस लेख में स्टीवॅन वोगल ने जीवशास्त्र की प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के प्रति रोषपूर्वक अपना गहरा असन्तोष व्यक्त किया है। निजी तौर पर, मैं जीवविज्ञान के बारे में निपट अज्ञानी हूँ। मैं जब कॉलेज में पढ़ता था उस समय ऐसा समझा जाता था कि भौतिकशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए जीवशास्त्र का कोई महत्व नहीं है। हमारी खाँचों में बँटी हुई शिक्षा-व्यवस्था में भौतिकशास्त्र, गणित या इंजीनियरिंग का कोई विद्यार्थी यदि जीवशास्त्र पढ़ना भी चाहे तो नहीं पढ़ सकता। और वोगल के कथनानुसार, यदि जीवशास्त्र में दिलचस्पी रखने वाले किसी विद्यार्थी को इसके प्रारम्भिक अध्ययन की अनुमति मिल भी जाए तो आज इसकी पाठ्यपुस्तकें और पढ़ाने के तरीके ऐसे हैं कि उस विद्यार्थी को इससे अरुचि पैदा हो जाएगी। लेख से पता चलता है कि पहले पाठ्यक्रम में ही विषय की शब्दावली में 1600 से भी अधिक नए शब्दों को शामिल कर लिया जाता है, और लघु परीक्षाओं का ज़ोर भी विशिष्ट शब्दावली के ज्ञान पर ही अधिक होता है। इससे विद्यार्थियों में यह गलत सन्देश जाता है कि जीवशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण पहलू शब्दावली को याद कर लेना है! यह स्थिति शिक्षकों के लिए जीवशास्त्र की एक अच्छी प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तक लिखने की चुनौती पेश करती है, खासतौर से आज जब देश में जीव विज्ञान के महत्व को महसूस किया जा रहा है, तथा कुछ आई.आई.टी. जैसे संस्थानों में भी जीवशास्त्र के अध्ययन कार्यक्रम प्रारम्भ करने की प्रक्रिया चल रही है ताकि इंजीनियरिंग के छात्रों की शिक्षा का दायरा अधिक व्यापक बनाया जा सके।

– वी. राजारामन (एसोसिएट एडीटर), रेज़ोनेंस पत्रिका - जून 2000

इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है कि लिंग विपर्यय (sex reversal) और गुणसूत्रीय (chromosomal) और समलक्षणीय (phenotypic) लिंग से विचलन आम होता है और मनुष्य में भी कभी-कभी पाया जाता है।

विद्यार्थियों में यह धारणा भी बन जाती है कि 1:1 लिंग अनुपात अर्धसूत्री विभाजन के कारण और X व Y गुणसूत्रों के बँटवारे के कारण स्वाभाविक तौर पर, अपने आप हो जाता है। उन्हें इस तथ्य से परिचित नहीं कराया जाता कि लिंग निर्धारण की 'सामान्य' व्यवस्थाओं वाले कई जीवधारियों में 1:1 के अलावा अन्य अनुपात भी होते हैं तथा इस बारे में अनेक तर्क दिए गए हैं कि सामान्यतया चयन से किस तरह अनुपात तय होता है। इस तथ्य का ज़िक्र भी बहुत कम होता है कि प्रजनन उपरान्त अस्तित्व के बने रहने के उदाहरण बिरले ही होते हैं। इसके अलावा ऐसी प्रजातियाँ कम ही होती हैं जिनमें मादा से नर के शरीर का आकार बड़ा होता हो।

अधिकांश जीवधारी उनके जीवनचक्र की किसी-न-किसी अवस्था में पुनर्योजन

(recombination) या लैंगिक प्रजनन का सहारा लेते हैं। इसका स्पष्टीकरण केवल 'प्रजाति की भलाई के लिए' तक सिमट कर रह जाता है। यह सही है कि लैंगिक प्रजनन और जीवधारियों के व्यक्तिगत स्वास्थ्य के बीच का सम्बन्ध अभी स्पष्ट नहीं है, किन्तु इस अज्ञान के कारण इस मुद्दे को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जाना चाहिए।

जीवशास्त्र की भाषा

आमतौर पर जीवशास्त्र में भौतिकी की तुलना में रसायनशास्त्र को अधिक विस्तृत और बेहतर स्थान दिया जाता है। पर किसी भी जीवधारी के आस-पास की दुनिया भौतिकी के नियमों से भी उतनी ही प्रभावित होती है जितनी पृथ्वी के धरातल के रसायनशास्त्र से। नियमों का लागू होना आकार पर निर्भर हो सकता है, इसलिए जीवधारियों के आकारों की जीवशास्त्र की दृष्टि से चर्चा करते समय गुरुत्वाकर्षण और पृष्ठ तनाव की भी चर्चा करना सार्थक हो सकता है। बड़े आकार के जीवधारियों के लिए गुरुत्वाकर्षण अधिक महत्वपूर्ण होता है जबकि छोटे आकार के जीवधारियों के लिए इसका कोई विशेष महत्व नहीं होता। पृष्ठ तनाव के सन्दर्भ में मामला उल्टा हो जाता है। सरल प्रदर्शनों और रोज़मर्रा के अनुभवों के आधार पर भौतिक पक्ष समझाना अधिक आसान होता है। जीवशास्त्र में एक ही कठिन भौतिक अवधारणा ऊर्जा की होती है, किन्तु इसकी चर्चा के लिए पर्याप्त स्थान और समय दिया जाता है।

अन्त में, मैं प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों में शब्दावली के जंजाल के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। ऐसा कहा जाता है कि ऐसे पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को 1600 नए शब्द सीखने पड़ते हैं। यह संख्या उन नए शब्दों से अधिक है जो किसी विदेशी भाषा के पाठ्यक्रम के पहले वर्ष में विद्यार्थियों को सीखने होते हैं। इस तरह के बोझ के साथ अवधारणाओं और विवादों के लिए कैसे समय मिल सकता है? अधिकांश शब्दावली (उदाहरण के लिए 12 मस्तिष्क तंत्रिकाओं के नाम) प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों के लिए अनावश्यक होती है। चूँकि अधिकांश पाठ्यक्रमों की परीक्षा बहु-विकल्पीय प्रणाली पर आधारित होती है, अनजाने में परीक्षण काझुकाव शब्दावली के परीक्षण की ओर हो जाता है और विद्यार्थी तो आखिर परीक्षाओं को ही इस बात का द्योतक मानते हैं कि हम किस बात को महत्व देते हैं।

* * * *

मैंने यहाँ विशिष्ट कठिनाइयों की चर्चा ज़रूर की है, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि अधिक व्यापक और बड़ी समस्याएँ मौजूद नहीं हैं। किन्तु वे अधिक विवादास्पद हैं और उनके समाधान भी स्पष्ट नहीं हैं। उदाहरण के लिए

एक बड़ी समस्या यह है कि कौन-से सामान्य विषयांश किस क्रम में पाठ्यक्रम में रखे जाएँ। हाल में प्रकाशित नई पाठ्यपुस्तकों से इसमें कोई खास मदद नहीं मिलती – वे बहुत अधिक विस्तृत और एक समान होती हैं। ऐसा लगता है मानो हर प्रकाशक को यह डर हो कि उपयोगिता की दृष्टि से विषयवस्तु का चुनाव करने की या विभिन्न दृष्टियों का समावेश करने की कोई कोशिश करने से बड़ी मुसीबत बरपा हो जाएगी। मैं यह सुझाव हरगिज़ नहीं देना चाहता हूँ कि कोई उच्च-अधिकार प्राप्त समिति गठित की जाए जो जीवशास्त्र के अध्यापन के लिए कोई नया (और शायद उनके हिसाब से रोमांचक) दृष्टिकोण निर्धारित करे। जीवशास्त्र के प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों के उपलब्ध प्रतिरूपों को एक जैसा बना देने से कोई फायदा नहीं हो सकता क्योंकि इससे यह खतरा बन जाता है कि कोई नई लकीर बन जाए जिसे फकीर पीटते रहें। इसके विपरीत, हो सकता है कि वर्तमान पाठ्यक्रमों से पढ़ाने योग्य सामग्री का चुनाव करने की, और विषय के तार्किक सूत्र को तलाशने की प्रक्रिया कुछ शिक्षकों के लिए लाभकारी होती हो। इसके साथ ही, ऐसे पाठ्यक्रमों का, जिनमें विषयवस्तु या क्रम सामान्य से हटकर हो, अधिक व्यापक प्रचार होना चाहिए।

स्टीवॅन वोगलः जन्तुशास्त्र विभाग, ड्यूक यूनिवर्सिटी, डरहम, यू.एस.ए.में वर्ष 2006 तक अध्यापन। 1966 में हावर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका से पीएच.डी.। इनके लेख अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद - अरविन्द गुप्तेः प्राणी शास्त्र के पूर्व प्राध्यापक। एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े रहे हैं। इन्दौर में निवास।

अनुवाद व सम्पादन सहयोग - सत्येन्द्र त्रिपाठीः पिछले बीस साल से होशंगाबाद में अँग्रेज़ी भाषा पढ़ा रहे हैं। कुछ साल पत्रकारिता भी की। उनकी शिक्षा विज्ञान, टेक्नोलॉजी और दर्शनशास्त्र में हुई है।

मूल लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक, जून 2000 में प्रकाशित हुआ था। 'रेज़ोनेंस' ने यह लेख 'बायोसाइंस' पत्रिका के खण्ड 37, सितम्बर, 1987 से लिया था।